❑ राजकुमारी बेंगानी

एक कपर्दक

अत्यधिक व्यावसायिक व्यस्तता के कारण झुंझलाए हुए धनदत्त ने छोटे भाई को पुकारते हुए कहा, "अभी तक तुम्हारा पूजा पाठ समाप्त नहीं हुआ देवदत्त? हो गया भैया! बस आ ही रहा हूं।" देवदत्त ने उत्तर दिया। "बस आ रहा हूं, आ रहा हूं, अरे। जब वृद्धावस्था आए, बैठे-बैठे पूजा पाठ करते रहना। यह उम्र है व्यवसाय की, धर्माभ्यास की नहीं।"

प्रणाम करते हुए देवदत्त ने नम्रता पूर्वक कहा, "भैया धर्मशास्त्र तो कहता है, जब तक इन्द्रियां शिथिल न हों, वार्द्धक्य दूर रहे, तभी तक का समय धर्माराधना के लिए उत्तम है। फिर कौन कह सकता है वार्द्धक्य आए या नहीं।"

भाई की इन वैराग्यमयी बातों का कोई उत्तर नहीं दे पाए धनदत्त। किन्तु मन ही मन निर्णय किया, 'मुझे धनोपार्जन के लिए विदेश चला जाना चाहिए। जब गृहस्थी का सारा भार कंधों पर आ पड़ेगा तो बाध्य हो जाएगा व्यवसाय में रत होने को।'

एतदर्थ एक शुभ दिन नौकाओं में विभिन्न प्रकार के पण्य लादकर धनदत्त विदेश यात्रा को निकल पड़े। नाना स्थानों में भ्रमण करते हुए पुण्योदय और पुरुषार्थ से विपुल सम्पत्ति अर्जित कर ली धनदत्त ने। अब उनकी इच्छा हुई घर लौटकर स्वजनों से मिलने की।

किन्तु इतनी धनराशि लेकर अकेले यात्रा करना भी तो खतरे से खाली नहीं था। कई लुटेरों का भय बना हुआ था। अत: उन्होंने समस्त धनराशि को कुछ बहुमूल्य मणियों में बदल लिया और एक कोमल बांस की खोखली नलिका में उन्हें भरकर कमर में बांध लिया, कुछ मुद्राएं राह खर्च के लिए भी रख ली थीं।

अब इसी भांति तैयार होकर धनदत्त भ्रमण करते हुए स्वग्राम के निकट एक वन में पहुंचे। पास ही के गांव से आहारादि के लिए खाद्य पदार्थ खरीदने को उद्यत हुए। किन्तु बांस नलिका को साथ ले जाना उचित नहीं समझ अत: एक अश्वथ वृक्ष के नीचे खड्डा खोदकर उसमें उसे गाड़ दिया और गांव की ओर चले।

दुर्भाग्यवश उसी पेड़ के ऊपर एक लकड़हारा काष्ठ संग्रह के लिए बैठा था। उसने चुपचाप सारा दृश्य देखा और उनके जाने के पश्चात् धीरे से पेड़ से नीचे उतर कर खड्डा खोदकर नलिका निकाल ली, किन्तु उस गरीब ने उन बहुमूल्य मणियों को रंग-बिरंगे कांच के टुकड़े समझा। फिर भी 'इनसे अवश्य ही कुछ द्रव्य मिलेगा' सोचकर गांव की ओर रवाना हो गया।

धनदत्त गांव के उपकण्ठ पर स्थित एक सरोवर में स्नान के लिए उतरे। स्नानोपरांत वे भी उस वन की ओर चल पड़े। राह खर्च के लिए जितनी मुद्राएं इन्होंने पास में रखी थीं उनमें से अब मात्र एक कपर्दक (कोड़ी) बच गया था। उन्हें स्मरण हुआ कि 'अरे! वह तो मैं सरोवर के किनारे ही भूल आया।'

बड़े ही लालची थे धनदत्त। एक कपर्दक खोना भी उन्हें सहन नहीं हुआ। अत: उसे लेने के लिए पुन: लौटे। लेकिन मन में भय बना था 'अवश्य ही वहां से लौटने में मुझे देर हो जाएगी। कोई दस्यु रात्रि के समय मेरी नलिका निकाल न ले।' किन्तु संवरण नहीं कर पाए उस अतिलोभ को। वही हुआ जो सोचा था। पहुंचते-पहुंचते रात हो गई और उन्हें विवश होकर उस गांव में ही रूकना पड़ा।

इधर धनदत्त के माता पिता भी पुत्र वियोग में अत्यंत व्याकुल थे। बारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे उससे मिले। उन्होंने देवदत्त से कहा, 'पुत्र अब हम लोगों से धनदत्त का विछोह सहा नहीं जाता। यदि हमारे प्राण बचाना चाहते हो तो शीघ्र ही उनकी खोज खबर लो।' देवदत्त स्वयं भी भाई की याद में विकल था अत: उसने एक उपाय निकाला। वह प्रतिदिन गांव के प्रमुख द्वार पर आहार जल साथ लेकर चला जाता और आए हुए पथिकों से, यात्रियों से भाई के विषय में पूछताछ करता।

संयोगवश वही लकड़हारा लकड़ी का भार लिए द्वार पर पहुंचा। बड़ा ही पिपासार्त था। देवदत्त के पास जल देखकर पानी पीने की इच्छा प्रकट की। उसने भी उसे पानी ही नहीं आहारादि देकर पूर्णत: सन्तुष्ट किया। उसकी साधुता ने लकड़हारे का विश्वास जीत लिया। अत: उसने वह नलिका देवदत्त को दिखाया और मणियों को बेचना चाहा। उस नलिका पर धनदत्त का नाम खुदा था। उसे पढ़ते ही वह चौंक पड़ा। उसने लकड़हारे से निर्भीक होकर नलिका के विषय में सब कुछ बताने को कहा। सारा वृतान्त सुनने के पश्चात् उसने कुछ द्रव्य देकर लकड़हारे से वह नलिका खरीद ली और भावी दुर्घटना को अनुमान कर तुरन्त उसी स्थान की ओर चल पड़ा जहां से लकड़हारे ने नलिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकाली थी।

जब धनदत्त अश्वथ वृक्ष के नीचे पहुंचा और खड्डे को खुदा हुआ पाया तो सन्न रह गया। जल्दी जल्दी उस खड्डे को गहरा खोदने लगा, किन्तु सब व्यर्थ, बांस नलिका तो गायब हो चुकी थी। अब तो वह पागलों की भांति किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना जोर-जोर से रोने लगा। सारा अरण्य उसके करुण क्रन्दन से कांप उठा।

ठीक उसी समय देवदत्त भी वहां पहुंच गया किन्तु गहरे आघात से सुध-बुध खोए हुए धनदत्त देवदत्त को पहचान नहीं सका।

चतुर देवदत्त ने तुरन्त वह नलिका भाई के सम्मुख रख दी। नलिका को देखते ही धनदत्त पुनः होश में आ गया और भाई को पहचान कर उससे लिपट गया और आनन्दाश्रु से भिंगो डाला भाई का स्कन्ध, भाई की पीठ।

देवदत्त ने नलिका प्राप्ति का सारा हाल भाई को सुनाया। चैन की सांस ली धनदत्त ने। अब अपनी लोमहर्षक विदेश यात्रा का विवरण सुनाते हुए गांव पहुंचे।

माता, पिता, परिजनों से मिलकर आनन्द के अथाह समुद्र में डूब गये धनदत्त। स्नान एवं आहारादि के पश्चात् स्वस्थ हुए धनदत्त भाई से पूछने लगे इन बारह वर्षों में उसने कितना द्रव्य उपार्जन किया।

बेचारा देवदत्त नतमस्तक होकर विनम्र शब्दों में इतना ही कह पाया, "भैया सारा परिवार सुख शांतिपूर्वक रह सके इतना तो कमाया ही किन्तु हां! धर्मानुष्ठान खूब किये।"

क्रोध से उबल पड़े धनदत्त बोले— "मैंने तुमसे धर्मानुष्ठान की बात नहीं पूछी है। तुमने तो व्यर्थ ही खो दिये हो बारह वर्ष? आभागा कहीं का? मुझे देखे मैंने कितना विपुल धन अर्जित किया है, अब हमारी पीढ़ियां आराम से बैठकर खा सकेंगी।"

इस बार उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया देवदत्त ने, "भैया कहां है आपका धन? आपने तो जो कुछ अर्जित किया था वह सब कुछ खो चुके। एक कपर्दक के सिवाय क्या है आपके पास? यह सारा द्रव्य तो अब मेरा है। मैंने इसे लकड़हारे से क्रय किया है।"

सकते में आ गये धनदत्त। अवाक् से भाई का मुंह देखते रह गये। क्षमा याचना करते हुए भाई से बोले, "सचमुच देवदत्त! यह धन तो तुम्हारा ही है। तुमने जो पुण्य उपार्जन किया था उसी के प्रताप से तुम्हें बिना कमाए ही विपुल धनराशि प्राप्त हो गई। अभागा तो वास्तव में मैं हूं जिसने धन भी खोया-समय भी।"

बड़े भाई के चरणों में गिर पड़ा देवदत्त। बोला, "नहीं भैया, सबका सब यह द्रव्य आपका ही है। मुझे तो बस धर्मानुष्ठान की आज्ञा दीजिए।"

—प्रधानाध्यापिका, श्री जैन शिक्षालय, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org